सिमरन

भाग - ३

गुरबाणी में सिमरन करने के लिए 'प्रातःकाल' अति उत्तम माना गया है, क्योंकि इस समय दुनिया गहरी नींद में सोयी होती है तथा वातावरण में संसारिक कोलाहल की तरंगें (vibrations) कम होती हैं। प्रातःकाल प्राकृतिक वायुमंडल शांत होता है जो सिमरन के लिए विशेष रूप से सहायक होता है।

अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ।। (पृ. २)
झालाघे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि ।। (पृ. २५५)
बाबीहा अंम्रित वेलै बोलिआ तां दरि सुणी पुकार ।। (पृ. १२८५)
भलके उठि पराहुणा मेरै घरि आवउ ।।.....
नामु सुणे नामु संग्रहै नामे लिव लावउ ।। (पृ. ३१८)
उठि इसनानु करहु परभाते सोए हरि आराधे ।। (पृ. ११८५)

गुरबाणी की इन पंक्तियों को पढ़कर हम समझ लेते हैं कि सुबह उठ कर कुछ समय के लिए नाम जपने अथवा सिमरन के लिए बैठने से ही हमारा धार्मिक कर्तव्य पूरा हो जाता है। परन्तु यह हमारी 'भूल' है।

पहले तो जब हम सिमरन के लिए बैठते हैं तो हमारी बाह्यमुखी वृत्तियाँ मन को टिकने नहीं देती तथा सिमरन के उद्देश्य से दूर ले जाती हैं। यदि कहीं मन एकाग्र हो भी जाए तो मन और तन निश्चल होने से नींद आ जाती है। इस **कशमकश** में ही सिमरन का समय गुज़र जाता है। हम मन की इस **'खींचतान'** को ही सिमरन समझ लेते हैं।

हाँ, सिमरन के लिए किये गए यह यत्न, प्रयास या 'साधना' यदि

श्रद्धापूर्वक किये जाएं तो यह भी कुछ समय बाद सफल हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे 'सिमरन' में मन टिकने लगता है ।

हमारा मन पिछले कई जन्मों से लगातार अटूट मायकी-सिमरन करता आया है, जिस कारण **'मायकी-सिमरन'** ही हमारे मन-चित-अन्तःकरण में –

धँस
बस
रस कर

दृढ़ हो चुका है ।

इस दृढ़ हुई **'मायकी रंगत'** को बदलना अथवा इस पर आत्मिक रंग चढ़ाना अति कठिन है, क्योंकि हमारा मन सारा दिन 'मायकी' वातावरण में ही विचरण करता है, जिस कारण हम इसी रंग को और पक्का करते जाते हैं । इस प्रकार हमारे **मन के तराजु का मायकी पलड़ा भारी होता जाता है ।**

दूसरे शब्दों में अन्तःकरण की **'मायकी रंगत'** को बदलने के लिए केवल प्रातःकाल में किया हुआ **थोड़ा सा सिमरन-प्रयास** या उद्यम ही **काफी नहीं ।** गुरबाणी में हमें –

उठते-बैठते
पल-पल
हर क्षण
श्वास-श्वास (सास-गिरास)
चलते-फिरते
सोते-जागते
दिन-रात
हर समय
आठों पहर
नित्य-प्रति

सदा-सदा

अटूट

प्रभु सिमरन की प्रेरणा की गई है –

ऊठत बैठत सोवत जागत सदा सदा हरि धिआईऐ ।। (पृ. ३७९)
ऊठत बैठत सोवत जागत हरि धिआईऐ सगल अवरदा जीउ ।। (पृ. १०१)
पलु पलु निमरव सदा हरि जपने ।। (पृ. ८०६)
चलत बैसत सोवत जागत गुर मंत्रु रिदै चितारि ।। (पृ. १००६)
ऊठत बैठत सोवत जागत सासि सासि हरि जपने ।। (पृ. १२९८)
सदा सदा सिमरि दिनु राति ।।
ऊठत बैठत सासि गिरासि ।। (पृ. ९७१)
हरि सिमरन की सगली बेला ।। (पृ. ११५०)
दिनु राती आराधहु पिआरो निमरव न कीजै ढीला ।। (पृ. ४९८)

इसका तात्पर्य यह है कि गुरसिख ने प्रातःकाल उठ कर नाम जपना है तथा फिर **उठते-बैठते** भी नाम जपना है । इस प्रकार उठते-बैठते नाम जपने से हम पर चढ़ा **माया का रंग फीका** (neutralise) **होता जाएगा** तथा जीवन का रंग दैवीय होता जाएगा ।

गुरबाणी में सिमरन के इस पक्ष को भलि-भांति दर्शाया गया है –

ऊठत बैठत सोवत धिआईऐ ।।
मारगि चलत हरे हरि गाईऐ ।। (पृ. ३८६)
आठ पहर सिमरहु प्रभु अपना मनि तनि सदा धिआईऐ ।। (पृ. ५००)
आठ पहर सिमरहु प्रभ नामु ।।
अनिक तीरथ मजनु इसनानु ।। (पृ. १८४)
नित उठि गावहु प्रभ की बाणी ।।
आठ पहर हरि सिमरहु प्राणी ।। (पृ. १३४०)

प्रभ की उसतति करहु दिनु राति ।।
तिसहि धिआवहु सासि गिरासि ।। (पृ २८०)

आठ पहर हरि हरि जपु जापि ।।
राखनहार गोविद गुर आपि ।। (पृ ११४९)

रैणि दिनसु तिसु सदा धिआई जि खिन महि सगल उधारे जीउ ।।
(पृ १०५)

हरि जपदिआ खिनु ढिल न कीजई मेरी जिंदुड़ीए
मतु कि जापै साहु आवै कि न आवै राम ।। (पृ ५४०)

इस **'बहिंदिआं-उठदिआं हरि नामु धिआवै'** के आदेश का पालन करना अति **कठिन** है, क्योंकि हमारा मन तो अपने पुराने संस्कारों के अनुसार उठते-बैठते **माया के क्रिया कलाप में खचित रहता है,** जिस कारण प्रभु का सिमरन नहीं हो सकता । परन्तु साध-संगति की सहायता से यह **कठिन खेल भी सरल हो जाता है ।**

प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए मन की **एकाग्रता या ध्यान** आवश्यक है। जो कार्य ध्यानपूर्वक न किया जाए, वह अधूरा, असफल या दिखावा (ठाठा-बागा) ही बन कर रह जाता है ।

इसलिए गुरबाणी हमें मन-तन-चित्त से सिमरन करने के लिए प्रेरित करती है –

मनि तनि प्रभु आराधीऐ मिलि साध समागै ।। (पृ ८१७)

इक चिति इक मनि धिआइ सुआमी लाइ प्रीति पिआरो ।।
(पृ ८४५)

प्रभ की उसतति करहु संत मीत ।।
सावधान एकागर चीत ।। (पृ २९५)

राम नाम जपि **हिरदे** माहि ।।
नानक पति सेती घरि जाहि ।। (पृ २८३)

हरि की भगति करहु **मनु लाइ ।।**
मनि बंछत नानक फल पाइ ।। (पृ २८८)

मन बच क्रमि राम नामु चितारी ।। (पृ. ९१६)

हम मन या अन्तःकरण के संस्कारों के अनुसार सोचते तथा कर्म करते हैं । यह **मायकी संस्कार** जन्मों-जन्मों के **मायकी सिमरन अथवा अभ्यास द्वारा बनते हैं,** जिन्हें बदलना **अति कठिन है ।** उदाहरणतः शराबी के मन-चित-अन्तःकरण में शराब के **संस्कार गहरे छप जाते हैं,** जो उसके जीवन के हर पक्ष में प्रकट होते रहते हैं ।

इसी प्रकार जब कभी हम दैवीय सिमरन करने का प्रयास करते हैं तो हमारे **पुराने दृढ़ मायकी संस्कार,** हमारे मन को **अनजाने ही अन्य रुचियों की ओर आकर्षित करते हैं** तथा हमारा सिमरन **बाहरी दिखावा ही बन कर रह जाता है** –

भूलिओ मनु माइआ उरझाइओ ।।
जो जो करम कीओ लालच लगि
तिह तिह आपु बंधाइओ ।। (पृ. ७०२)

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ।।
किंचत प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ।।
(पृ. ८५७)

मनु माइआ मै फधि रहिओ
बिसरिओ गोबिंद नामु ।। (पृ. १४२८)

माइआ जालु पसारिआ भीतरि चोग बणाइ ।।
त्रिसना पंखी फासिआ निकसु न पाए माइ ।। (पृ. ५०)

माइआ मोहि हरि सिउ चितु न लागै ।।
दूजै भाइ घणा दुखु आगै ।। (पृ. १०५२)

कबहू जीअड़ा ऊभि चड़तु है कबहू जाइ पइआले ।।
लोभी जीअड़ा थिरु न रहतु है चारे कुंडा भाले ।। (पृ. ८७६)

देखा गया है कि जब 'वाहिगुरू' गुरमंत्र का कीर्तन द्वारा अभ्यास किया जाता है तो कई मनचले जिज्ञासु जोश में आकर कीर्तन के सुर (tune) से

बाहर होकर ऊँची-ऊँची जोशीली आवाज में अभ्यास करते हैं। इस प्रकार वह **बेसुर होकर कीर्तन की लय-ताल में विघ्न डालते हैं** तथा अन्य **संगत** को पूरी तरह आत्मिक लाभ लेने से वंचित रखते हैं।

इसलिए एकत्रित होकर कीर्तन द्वारा **'सहज'** में सिमरन करना चाहिए, जिससे सारी संगत लाभ उठा सके। गुरबाणी भी इसकी पुष्टि करती है –

मन मेरे **सुख सहज सेती जपि नाउ ।।**
आठ पहर प्रभु धिआइ तूं गुण गोइंद नित गाउ ।। (पृ. ४४)

हरि का बिलोवना बिलोवहु मेरे भाई ।।
सहजि बिलोवहु जैसे ततु न जाई ।। (पृ. ४७८)

देहि बिमल मति सदा सरीरा ।।
सहजि सहजि गुन रवै कबीरा ।। (पृ. ४७८)

सुणि हरि गुण भीने सहजि सुभाए ।।
गुरमति सहजे नामु धिआए ।। (पृ. ७६७)

गुर कै सबदि मेरा हरि प्रभु धिआईऐ
सहजे सचि समावणिआ ।। (पृ. ११३)

गोबिदु गावहि सहजि सुभाए ।।
गुर कै भै ऊजल हउमै मलु जाए ।। (पृ. १२१)

'सिमरन' अथवा 'नाम' **दृढ़ करने** के लिए कई विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। जैसे –

श्वासों द्वारा,
आंखों में आखें डालकर,
सिर पर हाथ रखकर,
विभूति लगाकर,
मानसिक शक्ति के जादू टोने द्वारा,
हठ-योग,

ज्ञान-योग,
कर्म-योग,
तांत्रिक-योग,

आदि द्वारा ।

परन्तु गुरमति अनुसार केवल **पाँच प्यारों द्वारा ही सिमरन दृढ़ करवाया जा सकता है ।**

साध संगत रूपी **सचखंड** में सतिगुरु की पावन-हजूरी में प्रबल (दामनिक) दैवीय किरणों (Divine vibrations) वाला वातावरण व्याप्त होता है, जिससे जिज्ञासु की **अन्तरात्मा में** सहज ही **'नाम-सिमरन' दृढ़ होता जाता है ।**

गुरसिखों को पाँच प्यारों से जो 'गुरुमंत्र' प्राप्त होता है, वह **'आत्म-बीज'** बनकर **साधसंगत रूपी 'इलाही गुफा'** में सहज ही –

फलता
फूलता
खिलता
विकसित होता
दृढ़ होता रहता है ।

इस प्रकार सतिगुरु की बख्शिश द्वारा सहज ही –

'गुर-सबदी गोबिंद गजिआ' हो जाता है ।

मन-चित्त में सिमरन दृढ़ करवाने के लिए 'साधसंगति' अत्यधिक सहायक होती है ।

जन्मों-जन्मों से माया के बहुरसों में प्रवृत्त होकर हमारा मन **मायकी रस** लेने के लिए –

विचित्रता
नवीनता
भिन्नता

निरालापन

रस-कस

ढूँढता आया है । जब इसे यह रस नहीं मिलते, तो यह **उचाट** होकर चुपचाप ही कहीं ओर **खिसक** जाता है –

माइआ बिआपत बहु परकारी ।। (पृ. १८२)

त्रिसन न बूझी बहु रंग माइआ ।। (पृ. १२९८)

माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई ।। (पृ. ४८५)

इसलिए सतिगुरु ने **हमारी सुरति को अनेक प्रकार के मायकी रसों से हटाने के लिए 'साधसंगति' में प्रभु की अनंत तरंगों वाली रसीली तथा विस्मादमयी 'सिफ्त-सलाह' (प्रशंसा) तथा प्रेमाभक्ति के बार-बार अभ्यास द्वारा सुरति को** –

नित्य नवीन
दैवीय
विस्मयपूर्ण
रसीले
आश्चर्यजनक
स्वादिष्ट
चलूले रंग (गदगद)

वाले जीवन-उद्देश्य की ओर प्रेरित किया है ।

दूसरे शब्दों में, 'साधसंगति' में शब्द-सुरति के अभ्यास अथवा 'सिमरन' के द्वारा प्रभु की –

विस्मयी प्रशंसा
प्रेम-स्वैपना
प्रेम-हिंडोले
चुप-प्रीत
शुक्र

प्रार्थना
भय-भावना
वैराग्य

की **दैवीय भावनाएं** अचेत ही जिज्ञासुओं के हृदय में **उमड़** पड़ती है।

बार-बार सिमरन अभ्यास करना 'शब्द की कमाई' का एक बहुत आवश्यक अंग है। इसमें कठिन साधना, धैर्य तथा **श्रद्धा-भावना** की आवश्यकता होती है तथा **'रसहीन' अवस्था (अलूणी सिल चाटना) से गुजरना पड़ता है।** परन्तु विरवण्डित हुए अतृप्त मन को टिकाने का **एकमात्र साधन** गुरुमंत्र का **बार-बार 'इक मन इक चित भाइ' अभ्यास करना ही है।**

इसका महत्व तथा विधि गुरबाणी में इस प्रकार बताई गई है –

बारं बार बार प्रभु जपीऐ ॥
पी अंम्रितु इहु मनु तनु /|पीऐ ॥ (पृ. २८६)

सिमरि सिमरि नामु **बारं बार** ॥
नानक जीअ का इहै अधार ॥ (पृ. २९५)

उचरहु राम नामु **लरव बारी** ॥ (पृ. १९४)

इक दू जीभौ लरव होहि लरव होवहि लरव वीस ॥
लरवु लरवु गेड़ा आरवीअहि एकु नामु जगदीस ॥ (पृ. ७)

देरवने में आया है कि बहुत से आध्यात्मिक जिज्ञासु **मानसिक शून्य (सुन-समाधि) या शून्य अवस्था** (thoughtless state of mind) **को ही 'सिमरन' की 'अन्तिम-मंजिल' या पूर्ण प्राप्ति मानकर संन्तुष्ट हो जाते हैं।** इस प्रकार के जिज्ञासुओं से 'भूल' यह होती है कि वह **'भावनाहीन फीका' रटन करते हैं।**

गुरबाणी में इस विचार की यूं पुष्टि की गयी है –

सुंनो सुंनु कहै सभु कोई ॥
अनहत सुंनु कहा ते होई ॥ (पृ. ९४३)

नउ सर सुभर दसवै पूरे ।।
तह अनहत सुंन वजावहि तूरे ।।
साचै राचे देखि हजूरे ।।
घटि घटि साचु रहिआ भरपूरे ।।
गुपती बाणी परगटु होइ ।।
नानक परखि लए सचु सोइ ।। (पृ. ९४३–४४)

सुंन सबदु अपरंपरि धारै ।। (पृ. ९४४)

योगी लोग मन की विकारी चेष्टा से खाली **'विचारहीन अवस्था' (अफुर अवस्था)** को शून्य या अनहत्-शून्य कहते थे । गुरू साहिब ने उन्हें समझाया कि इस शून्य (thoughtless state of mind) को नौं दरवाजों से हटा कर, **मन की वृत्तियों को दैवीय-गुणों, भावनाओं (वलवलों) तथा प्रेम स्वैपनाओं से भरपूर करना है ।** इस दशा में शून्य (emptiness) के स्थान पर 'सुरति' में आत्म-मंडल का **रसीला अनहद नाद,** इलाही संगीत (Divine music) सुनाई देता है, जिसमें से **आत्मिक आनन्द उत्पन्न होता है ।** इस प्रकार 'शब्द' का **अनुभवी ज्ञान बूझ लिया जाता है** तथा जिस **'तत्'** (तथ्य) की ओर **'शब्द'** संकेत करता है, वह प्रत्यक्ष **प्रकट हो जाता है ।**

दूसरी ओर योगियों की रसहीन 'अफुर' (स्थिर), शून्य अवस्था **केवल 'शारीरिक समाधि'** के दौरान ही कायम रहती है । जागृत-अवस्था में ऐसे 'शून्य' का कोई अर्थ या लाभ नहीं ।

साधारणतः कहा जाता है कि हम ईश्वर को **दिल में याद करते हैं,** दिखावे के लिए मुँह मारने (जाप करने) की क्या आवश्यकता है ? परन्तु गुरबाणी में **रसना द्वारा सिमरन अथवा रटन का ताकीदी आदेश है** –

हरि हरि हरि हरि **रसना कहहु ।।** (पृ. ११३८)

कोटि दान इसनानं अनिक सोधन पवित्रतह ।।
उचरंति नानक हरि हरि रसना सरब पाप बिमुचते ।। (पृ. ७०६)

रसना सिमरत पाप बिलाइण ।। (पृ ८६७)

रसना गुण गावै हरि तेरे ।।
मिटहि कमाते अवगुण मेरे ।। (पृ १०८०)

रसना जपै न नामु तिलु तिलु करि कटीऐ ।।
हरिहां जब बिसरै गोबिद राइ दिनो दिनु घटीऐ ।। (पृ १३६२)

गुर कै बचनि रिदै धिआनु धारी ।।
रसना जापु जपउ बनवारी ।। (पृ ७४०)

रसना राम को जसु गाउ ।।
आन सुआद बिसारि सगले भलो नाम सुआउ ।। (पृ १२२०)

जिह प्रसादि ग्रिह संगि सुख बसना ।।
आठ पहर सिमरहु तिसु रसना ।। (पृ २६९)

मेरे मन मुखि हरि हरि हरि बोलीऐ ।। (पृ ५२७)

वास्तव में हम सिमरन के विषय में **पूछताछ, खोजबीन** तो बहुत करते हैं, जानकारी हासिल करने के लिए ज्ञान भी बहुत घोटते हैं – परन्तु **असल में सिमरन नहीं करते !!**

ऐसी पूछताछ या पड़ताल केवल –

दिमागी वाद-विवाद करने के लिए,
प्रचार करने के लिए,
भद्रपुरुष बनने के लिए,
अहम् को पुष्ट करने के लिए,
दिमागी मानसिक शुगल के लिए,

की जाती है ।

वास्तव में सिमरन करने का विचार या **उत्साह केवल नाम मात्र** ही होता है – जो थोड़ी सी कठिनाई या किसी अन्य कारण से **उड़ जाता है ।**

राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ ।। (पृ ४९१)

कबीर राम कहन महि भेदु है ता महि एकु बिचारु ।।
सोई रामु सभै कहहि **सोई कउतकहार ।।** (पृ १३७४)

तेरा जनु एकु आधु कोई ।।
कामु क्रोधु लोभु मोहु बिबरजित हरि पदु चीन्है सोई ।।
(पृ. ११२३)

अजगवरु सतिगुरु पुरखु गुरमति गुरु सिख अजरु जरंदे ।
करन बंदगी विरले बंदे । (वा.भ.गु. ४०/१५)

इसलिए गुरबाणी में सिमरन करने को –

''आखण अउखा साचा नाउ ।।''

''सिल अलूणी चटणी'' (स्वादहीन अवस्था)

कहा गया है ।

परन्तु **साध-संगत रूपी आत्मिक 'गुफा' के उच्च एवं पावन वातावरण** (sublime aura) **में सिमरन की यह प्रक्रिया सरल और सहज ही हो जाती है ।** तभी गुरबाणी में सतगुरु जी ने हमें –

'मिलु साधसंगति भजु केवल नाम'

का उपदेश दिया है –

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ।। (पृ. ६३१)
सासि सासि सिमरउ प्रभु अपुना **संतसंगि नित रहीऐ ।।**
एकु अधारु नामु धनु मोरा अनदु नानक इहु लहीऐ ।। (पृ. ५३३)
हरि साचा सिमरहु भाई ।।
साधसंगि सदा सुखु पाईऐ हरि बिसरि न कबहू जाई ।।
(पृ. ६१६)

प्रभ का सिमरनु **साध कै संगि ।।**
सरब निधान नानक हरि रंगि ।। (पृ. २६२)
हरि हरि सिमरहु संत गोपाला ।।
साधसंगि मिलि नामु धिआवहु पूरन होवै घाला ।। (पृ. ६१७)

- क्रमशः